THE TIMES OF INDIA

Date:01-12-23

Code uncode

State poll campaigning showed how tough EC's job will be when it oversees 2024 national elections

TOI Editorials

Voting for five state assemblies is over. Naturally, weeks since polls were announced on October 9 saw intense and oftentimes down-and-dirty campaigns. Increasingly, parties are pushing the boundaries on fair conduct. New ways and means are found to dodge the Election Commission's model code of conduct (MCC), the do's and don'ts for parties, candidates and government officials. If MCC's spirit lies in its 'appeal' for a minimum standard of conduct and behaviour, its flesh and blood are the rules for the 'party in power' – for governments, ministers and civil servants regarding state schemes, mixing political and official visits, use of state transport etc.

Yet, with every election, MCC is under more strain. For one, the 48-hour silence period is obsolete in the age of internet and social media. Politicians grounded for toxic remarks in physical rallies use their online presence to press the same message. Given MCC kicks in once the poll schedule is announced, there was little for EC to do when a party announced some candidates on August 17, sidestepping fair practice. There are hardly any enforceable ways to ensure incumbent MLAs re-contesting polls did not mix the official with the political.

EC rightly suspended a direct money transfer scheme to Telangana's farmers. But the Telangana minister will not be the only one, as general election campaigning gets underway, who will violate MCC. Using an existing welfare scheme as campaign tool is wrong. He was pulled up for "disturbing the level-playing field". This approach should be applied fairly – everyone who disturbs the playing field in the future should be pulled up. MCC must be seen to be fairly ensuring fair practice. EC has a tough job, and over all, it does a great job. 2024 will be a big challenge for it.

Date:01-12-23

दैनिक भास्कर

जाति-जनगणना का मुद्दा कितना असर डालेगा

संपादकीय

जाति आधारित सर्वे के बाद बिहार सरकार ने नौकरियों और शिक्षा में आरक्षण की सीमा अब 60 से बढ़ाकर 75% (आबादी में हिस्सेदारी के अनुरूप) कर दी है। लेकिन राज्य में कहीं भी इस मुद्दे पर हलचल नहीं हुई। 34 साल पहले जब देश में मंडल आयोग लागू हुआ था तो यही मुद्दा तनाव का बड़ा कारण बना था, जिसने उत्तर भारत में राजनीतिक शक्ति संतुलन बदल दिया था। इस बार ऐसा कुछ भी नहीं हो रहा है क्योंकि सामान्य वर्ग इस अंतराल में लगातार कम होती सरकारी नौकरियों को लेकर बहुत उत्साहित नहीं है। वैसे भी कुल रोजगारों में मात्र 5.8% ही सरकारी नौकरियां हैं, बाकी निजी क्षेत्र या स्वयमेव - रोजगार में। देश के जॉब मार्केट में पहले से ही करोड़ों की भीड़ में हर साल डेढ़ करोड़ नए युवा जुड़ जाते हैं जबकि सरकारी नौकरियां चंद लाख भी नहीं होतीं। उदाहरण के लिए बिहार में कुल सरकारी कर्मचारी चार लाख हैं और हर साल औसतन कुछ हजार नई नौकरियां पैदा होती हैं, लेकिन 30 लाख नए युवा नौकरी के बाजार में बढ़ जाते हैं। यही कारण है कि इस बार 'जिसकी जितनी संख्या भारी, 'उसकी उतनी हिस्सेदारी' के आधार पर बढ़ाया गया आरक्षण प्रतिशत समाज में बैकवर्ड-फॉरवर्ड तनाव पैदा नहीं कर सका। बहरहाल आम चुनावों के मद्देनजर राजनीतिक पार्टियों की रणनीति पर नजर रहेगी।

Date:01-12-23

दुबई के जलवायु सम्मलेन से सबको कम ही उमीदें हैं

पलकी शर्मा, (मैनेंजिंग एडिटर)

इस सप्ताह जब मैं दुबई पहुंची तो वहां सीओपी 28 का माहौल पहले ही जमने लगा था। लग्जरी शॉपिंग, गगनचुम्बी इमारतों और नाइट-लाइफ का यह शहर जलवायु परिवर्तन के खिलाफ लड़ाई का नेतृत्व करने के लिए तैयार था। वह उस सीओपी28 की मेजबानी कर रहा है, जो दुनिया को बचाने की कोशिशों में जुटा एक शिखर सम्मेलन है।

सीओपी में 1992 में स्थापित यूएन क्लाइमेट फ्रेमवर्क का प्रत्येक सदस्य शामिल है। दुबई एक्स्पो सेंटर स्थित इसका आयोजन स्थल भव्य और अत्याधुनिक है। 200 देशों और क्षेत्रों से भाग लेने वाले 70,000 प्रतिनिधियों के साथ यह अब तक का सबसे बड़ा सम्मेलन है। लेकिन इससे उम्मीदें कम ही हैं।

दुनिया भर के नेता, कार्यकर्ता, कॉर्पोरेट दिग्गज और पत्रकार दुबई आ रहे हैं, लेकिन सोचो यहां कौन नहीं आया है? अमेरिकी राष्ट्रपति जो बाइडन और चीनी राष्ट्रपति शी जिनपिंग, दोनों नदारद हैं। दोनों ने अपने स्थान पर अपने जलवायु-दूत भेज दिए हैं।

यह दुनिया के लिए बहुत ही खराब संदेश है। अमेरिका और चीन दुनिया के दो सबसे बड़े प्रदूषक देश हैं, लेकिन उनके नेताओं ने इस समिट में कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई। इससे पता चलता है कि वे इसे कितनी अहमियत देते हैं।

सम्मेलन का एजेंडा मुख्यतया दो बातों पर केंद्रित है- इस क्षेत्र में प्रगति का जायजा लेना और अगले कदमों के लिए फंडिंग करना। लेकिन इन दोनों में ही कमीबेशी रहने वाली है। 2015 में दुनिया के देशों ने वैश्विक तापमान वृद्धि को 1.5 डिग्री सेल्सियस तक सीमित करने के लिए पेरिस समझौते पर हस्ताक्षर किए थे। साथ ही वे 2030 तक वैश्विक उत्सर्जन में 43% की कटौती करने पर सहमत हुए थे।

इन आठ वर्षों में क्या प्रगति हुई है? वर्तमान दर पर तो 2030 तक वैश्विक उत्सर्जन में मात्र दो प्रतिशत की गिरावट आएगी। यानी हम अपने लक्ष्य से कोसों दूर हैं। 2023 सबसे गर्म वर्ष होने की राह पर है। यह अब एक सालाना चलन बन गया है। बाढ़, सूखे और तूफानों के साथ हर साल रिकॉर्ड पर सबसे गर्म होता जा रहा है।

सार्थक जलवायु कार्रवाई के लिए हमें बेहतर नीतियों और धन की आवश्यकता है। जलवायु संबंधी विनाशों की कीमत भी किसी न किसी को चुकानी ही होगी। पाकिस्तान का ही मामला ले लें। औद्योगिक युग के बाद से इस देश का सभी उत्सर्जनों में केवल 1% योगदान रहा है, लेकिन हाल में आई भीषण बाढ़ ने इसे तबाह कर दिया।

हालांकि बाढ़ आना कोई नई बात नहीं है, लेकिन जलवायु परिवर्तन के कारण इनका स्तर कई गुना बढ़ गया है और इससे 30 अरब डॉलर तक का नुकसान हुआ है। मिस्र में पिछले सीओपी शिखर सम्मेलन में ऐसे देशों को समर्थन देने के लिए एक कोश बनाने पर सहमति बनी थी। लेकिन हमने अभी तक धनराशि के दर्शन नहीं किए हैं।

ग्लोबल साउथ चाहता है कि अमीर देश 2030 तक कम से कम 100 अरब डॉलर का बिल चुकाएं। आखिरकार, यह उनके द्वारा फैलाया प्रदूषण ही है, जो दुनिया को इन हालात में ले आया है। लेकिन अमीर देश अनिच्छुक हैं। वे कहते हैं कि यह अब एक साझा जिम्मेदारी है। अमीर बनाम गरीब की यह बहस हर सीओपी में एक आम विषय है।

पिछले सीओपी में दुनिया के देश चरणबद्ध तरीके से कोयले का उपयोग समाप्त करने पर सहमत हुए थे। इसलिए स्वाभाविक रूप से इस बार उनसे जीवाश्म ईंधन को चरणबद्ध तरीके से खत्म करने की उम्मीद की जा रही है। लेकिन इसमें से बहुत कुछ मेजबान देश पर निर्भर करता है। क्योंकि खुद यूएई हर दिन 40 लाख बैरल तेल का उत्पादन करता है। उनके कुल राजस्व का 35% से अधिक तेल से आता है। तो क्या वे इस पर सहमत होंगे?

हालिया रिपोर्टों से यह भी पता चलता है कि यूएई ने तेल और गैस सौदे करने के लिए सीओपी का उपयोग करने की कोशिश की है। यदि यह सच है तो यह हितों के टकराव का मामला बन जाएगा। इसके बावजूद तेल-उत्पादकों को जलवायु-नियंत्रण की प्रक्रिया में सम्मिलित करना जरूरी है।

तेल और गैस उद्योग ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में 75% का योगदान करते हैं। उनके बिना आप प्रदूषण में कटौती नहीं कर सकते। आपको उनके समर्थन और धन की आवश्यकता है। 2022 का साल तेल के लिए ब्लॉकबस्टर वर्ष था। इसमें 200 अरब डॉलर का मुनाफा कमाया गया था।

सरकारों को इसमें से कुछ का निवेश ग्रीन एनर्जी में करने के लिए मनाने की जरूरत है। नहीं तो हम अपने लक्ष्य में पिछड़ते रहेंगे। अगले साल के सीओपी के लिए कोई मेजबान तक नहीं है। यह पूर्वी यूरोप में आयोजित होना प्रस्तावित है, लेकिन यूक्रेन में चल रहे युद्ध के बीच रूस का कहना है कि वह इसकी इजाजत नहीं देगा।

राष्ट्रीय सहारा

Date:01-12-23

मुफ्त खाद्यान्न योजना

संपादकीय

सरकार ने 81.35 करोड़ गरीबों को हर महीने पांच किलो खाद्यान्न मुफ्त देने की योजना को पांच सालों के लिए बढ़ा दिया है। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की अध्यक्षता में हुई मंत्रिमंडल की बैठक में इस संबंध में फैसला लिया गया। प्रधानमंत्री गरीब कल्याण अन्न योजना द्वारा लाभार्थियों के कल्याण को ध्यान में रखते हुए लक्षित आबादी तक खाद्यान्न किफायती रूप से मुहैया कराया जा रहा है। 2020 में कोरोना महामारी के बाद चालू की गई इस योजना की अवधि दिसम्बर में समाप्त होने वाली थी। यह योजना मोदी की जनहितकारी योजनाओं में प्राथमिकता पर रही है, जिसका बड़ी आबादी लाभ उठा रही है। यौन अपराधों से जुड़े मामलों में त्वरित न्याय देने के लिए फास्ट ट्रैक अदालतों को भी अगले तीन साल तक जारी रखने की मंजूरी दे दी गई है। 2019 में चालू की गई यह योजना एक साल के लिए थी, जिसे बाद में दो साल के लिए बढ़ाया गया था। इस योजना को विधिवत जारी रखने के प्रयास होने चाहिए, टुकड़ों-टुकड़ों में इसे बढ़ाने का लाभ नहीं नजर आता यौन अपराधों को रोक पाने में व्यवस्था के नाकाम रहने को देखते हुए विशेष अदालतों के महत्त्व को समझना होगा।

रही बातमुफ्त अनाज वितरण की तो गरीबों और जरूरतमंदों हितों में चलाई जा रहीं योजनाओं पर अमल करना सरकार की जिम्मेदारी है। मगर इससे लोगों में बड़ी संख्या में मुफ्तखोरी की लत बढ़ने से इनकार नहीं किया जा सकता। हमारे

भंडारों में रखा खाद्यान्न कई दफा खराब होने की खबरें आती रहती हैं। उनका इससे बेहतर इस्तेमाल नहीं हो सकता कि हम हर पेट को रोटी की सुविधा दें। हालांकि कहने को यह मदद है क्योंकि पांच किलो अन्न में कोई भी महीना नहीं बिता सकता। उस पर बिचौलियों द्वारा हो रही हेराफेरी को भी पूरी तरह नहीं रोका जा सकता। सबसे निचली पायदान पर खड़े नागरिकों के अधिकारों को वाजिब तौर पर पूरा करना सरकारों की जिम्मेदारी होने के बावजूद सरकारी खजाने पर सिर्फ इसी योजना से 11.80 लाख करोड़ रुपये के भार को संतुलित करना भी उसका ही काम है। हर हाथ को रोजगार और हर पेट को खाना देने वाली सोच का स्वागत होना चाहिए। परंतु इससे देश की आर्थिक हालत खोखली न होने पाए जिसे कड़ी मशक्कत के बाद थोड़ा ढर्रे पर लाया जा सका है।

Date:01-12-23

फिर भी कई सवाल

डॉ मनीष कुमार चौधरी, (ये लेखक के अपने विचार हैं)

वर्ष 1979 में एक चर्चित फिल्म आई थी 'काला पत्थर एक सच्ची खनन त्रासदी से प्रेरित यह फिल्म जीवन के सभी क्षेत्रों के लोगों के बारे में है, जो आपदा से लड़ने के लिए साहस और धैर्य दिखाते हैं। उत्तराखंड की भयावह घटना बरबस उस फिल्म को स्मृति पटल पर ले आती है। उत्तराखंड के उत्तरकाशी में सिलक्यारा सुरंग का एक हिस्सा ढहने से 41 मजदूर 17 दिनों तक 2 किलोमीटर की जगह में फंसे रहे। अंततः उन्हें सुरक्षित बाहर निकाल लिया गया। यह एक सुखद उपलब्धि है। राज्य और केंद्र सरकार की तत्परता सराहनीय और प्रेरक रही।

उत्तराखंड में चार धाम सड़क परियोजना के अंतर्गत बन रही सिलक्यारा सुरंग में अचानक आए मलबे से उत्पन्न बड़ी आपदा से मुक्ति तो मिल गई है लेकिन भविष्य को लेकर बड़ी चेतावनी भी मिली है। आखिर, इस तरह की घटनाएं क्यों घटित होती हैं? यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। विकास के पथ पर दौड़ता देश जब इस तरह की आपदा में विर जाता है तो संपूर्ण देश की संवेदना उमड़ पड़ती है आज संपूर्ण भारत में इस घटना को लेकर • जिस तरह की चिंता और सहयोग दिख रहा है, वह सकारात्मक उम्मीद के रूप में लिया जा सकता है। देश के प्रधानमंत्री, राज्य के मुख्यमंत्री, केंद्रीय मंत्री, आपदा प्रबंधन के कुशल और दक्ष नेतृत्व, डॉक्टरों की निगरानी, मीडिया द्वारा उम्मीद को जीवित रखना, सुरंग में फेसे मजदूरों के साहस और परिजनों का धैर्य ये तमाम वो पक्ष हैं, जो हमारे दुःख में साथ होने की मुहीम को बल देते हैं। प्रकृति के साथ हमारा संबंध मैत्रीपूर्ण होना चाहिए। सुविधा की चाहत ने प्रकृति के विरोध में मनुष्य को ला खड़ा किया है। यह एक विध्वंसात्मक कदम है। निर्माण की प्रक्रिया हमारी सभ्यता की बुनियाद को मजबूती देती है। चांद पर रहने को लेकर हमने सोचना शुरू कर दिया है। यह मनुष्य की शक्ति और सामर्थ्य का नायाव उदाहरण है। वैज्ञानिक और तकनीकी उन्नति ने जीवन को सरल और समृद्ध कर दिया है।

क्या यह जरूरी नहीं है कि उच्च हिमालयी क्षेत्रों में सड़क, रेल और जलविद्युत परियोजनाओं के निर्माण को लेकर अतिरिक्त सतर्कता बरती जाए। इन क्षेत्रों में सुरंगों का जो जाल बिछ रहा है, उसकी वैकल्पिकी पर विचार किया जाए। विकसित देशों से तकनीकी सहायता ली जाए। क्या यह सच नहीं है कि सुरंग निर्माण के टेंडरों या ठेकों में सुरक्षा मानकों का पूर्णतः पालन नहीं होता है। इस तरह के निर्माण में सेफ्टी ऑडिट के बिना कार्य आगे नहीं बढ़ना चाहिए। यह जरूरी

मानक है, लेकिन निर्माण परियोजनाओं का नेतृत्व कर रहे अधिकारियों में दृढ़ता से मानकों के पालन को लेकर लचीलापन देखा गया है। कुछ वर्षों से सुरंगों का निर्माण काफी बढ़ता जा रहा है। विशेषकर पहाड़ी क्षेत्रों में इस तरह के निर्माण की प्रक्रिया जोखिम भरी होती है।इस तरह के निर्माण में कई बार पेशेवर तरीकों का इस्तेमाल न होकर शॉर्टकट तरीकों पर भरोसा किया जाता है। यह खतरनाक किस्म के संकट पैदा करता है।

इस तरह की किसी भी निर्माण परियोजना में सेफ्टी और तकनीकी ऑडिट बेहद जरूरी होता है, जो हमें आपदा से बचने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। संप्रति भारत में अन्य विकसित देशों के मुकाबले सर्वाधिक सुरंगों का निर्माण हो रहा है। इसके लिए जरूरी है कि अंतरराष्ट्रीय मानकों का कड़ाई से पालन किया जाए। सिलक्यारा सुरंग हादसा हमारे लिए सबक की तरह है। यह मसला सिर्फ 41 मजदूरों के जीवन से ही जुड़ा नहीं है, बल्कि हमारी निर्माण प्रक्रिया पर भी गंभीर प्रश्न है। मजदूरों के जीवन की सुरक्षा को लेकर भी कई बार निर्माण परियोजनाओं में उदासीनता देखी जाती है, जिसमें हमें सुधार लाना होगा क्योंकि मजदूर भी हमारी तरह ही इंसान है। मनुष्यता के दृष्टिकोण को जीवित रखकर ही हम सकारात्मकता, सृजनात्मकता और निर्माण का इतिहास लिख सकते हैं। निर्माण की पूरी प्रक्रिया अनुभवी और विशेषज्ञ टीम के साथ की जाती है। फिर भी ऐसे हादसे अनुभव और विशेषज्ञता को संदिग्ध बनाते हैं।

यह ऐतिहासिक चेतावनी है कि प्रकृति और संस्कृति के साथ जब-जब भी मनुष्य ने छेड़छाड़ की है, तब- तब आपदाओं ने क्रूर कृत्य किया है। भारत जैसे विकासशील देश में निर्माण की अपार संभावनाएं और जरूरतें हैं। लेकिन निर्माण की बड़ी-बड़ी परियोजनाएं भी आज भ्रष्टाचार से मुक्त नहीं हैं। प्रत्यक्ष और अपरोक्ष रूप से राजनीति और अफसरशाही का मजबूत गठजोड़ भी ऐसी घटनाओं के लिए एक हद तक उत्तरदायी है। भारत में भ्रष्टाचार की जड़ें बहुत गहरी हैं। नीतिगत पारदर्शिता के बावजूद व्यावहारिक भ्रष्टाचार जीवित बना रहता है। राष्ट्रहित की संकल्पना को तभी ठोस और पवित्र धरातल मिल सकता है, जब हमारी अंतर्चेतना में देश को बेहतर बनाने का संकल्प हो। आपदाएं सदैव हमारा तटस्थ मूल्यांकन करती हैं। जरूरत है उस मूल्यांकन को प्रायोगिक बनाने की तभी हम दुनिया में अपनी दक्षता का डंका बजा सकते हैं। आजादी के बाद जिस निर्दोष निर्माण की प्रक्रिया शुरू हुई, वह आज और भी तीव्र रूप से गतिशील है। आज जो भी चीजें निर्मित हो रही हैं, उनमें दीर्घता की जगह तात्कालिकता का आग्रह है। हम दुनिया का नेतृत्व करने का हौसला रखते हैं हमारा हौसला तभी हो सकता है, जब हम वैज्ञानिकता और कर्मठता के साथ आगे बढ़ते हैं। अपार संभावनाओं के बीच हमें जरूरत है, सिर्फ दृढ़ इच्छाशक्ति की, इसकी बदौलत ही कोई मुल्क नया इतिहास रच सकता है।

Live हिन्दुस्तान.com

Date:01-12-23

किसिंजर का जाना

संपादकीय

अमेरिका के पूर्व विदेश मंत्री हेनरी किसिंजर का दुनिया से जाना एक युग के अवसान की तरह है। वह सौ वर्ष के हो चुके थे, लेकिन अब भी वैचारिक रूप से सक्रिय थे। अमेरिकी राजनयिक बिरादरी किसिंजर की सलाह पर कान देती थी। उन्हें अमेरिका के साथ ही, वैश्विक राजनीति पर भी गहरे प्रभाव के लिए हमेशा याद किया जाएगा। किसिंजर ने दो अमेरिकी राष्ट्रपतियों के अधीन कालजयी प्रभाव वाले कार्य किए। वियतनाम युद्ध के अंत और शीत युद्ध के समापन की ओर बढ़ने में उनकी भूमिका उल्लेखनीय है। एक राजनयिक या नेता के रूप में वह दुनिया से जाते-जाते भी नेतृत्व शैलियों पर केंद्रित किताब तैयार कर रहे थे। अमेरिकी राजनय और राजनीति में उनकी लगभग 60 साल की सक्रियता दुनिया के तमाम नेताओं के लिए प्रेरक है और हमेशा रहेगी। याद रहे, इसी साल जुलाई में किसिंजर चीनी राष्ट्रपति शी जिनपिंग से मिलने अचानक बीजिंग पहुंच गए थे। मतलब, वाशिंगटन अपने वयोवृद्ध नेता के माध्यम से चीन से संबंध सुधारने की राह तलाश रही थी। चीन की मजबूती बढ़ाने में किसिंजर का बहुत योगदान रहा।

अफसोस, हेनरी किसिंजर जैसे योग्य अमेरिकी नेता को ज्यादातर भारत के प्रतिपक्ष में देखा गया। 1970 के दशक में वह रिपब्लिकन राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन के अधीन जब विदेश मंत्री थे, तब पाकिस्तान के पक्ष में दलीलें दिया करते थे। तत्कालीन पूर्वी पाकिस्तान से जब शरणार्थियों की आंधी भारत की ओर चली, जब पाकिस्तानी सेना ने वहां दमन चक्र चलाया, तब भी वह भारत के विरोध में थे। इतिहास में दर्ज है, वह शरणार्थी समस्या के लिए भी भारत को ही जिम्मेदार मानते थे। भारत ने जब बांग्लादेश की मुक्ति के लिए संघर्ष में सहयोग दिया, तब वह आक्रामक हो गए थे। हालांकि, उनका फैसला गलत था और बाद में उन्होंने भारत के प्रति चुप बैठने में ही अपनी भलाई समझी। लगे हाथ, इस बात से भी संतोष जताया कि भले पूर्वी पाकिस्तान हाथ से निकल गया, पर पश्चिमी पाकिस्तान बचा लिया गया।

उसके बाद पश्चिमी पाकिस्तान जिस तरह से घृणा में डूबते हुए पिछड़ने लगा, उसमें एक हद तक किसिंजर की नीतियों का योगदान रहा। पाकिस्तान पूरी तरह अमेरिकापरस्त हो गया, लेकिन भारत की गुटनिरपेक्षता लगातार कायम रही। अब यह कहने में कोई संकोच नहीं कि तब पूरी अमेरिकी सत्ता को भारत की निष्पक्षता चुभती थी। इसी चुभन की वजह से उन्होंने खिसियानी बिल्ली खंभा नोचे के अंदाज में भारत और भारतीय प्रधानमंत्री के लिए ऐसे अपशब्दों का इस्तेमाल किया था, जिसे कभी भुलाया न जा सकेगा।

बहरहाल, धीरे-धीरे उन्हें भारत की मजबूती और अपनी गलती का एहसास हुआ। उन्हें अच्छी जीवन शैली की वजह से लंबी उम्र मिली और उन्होंने अपनी कल्पना से परे एक उभरते भारत के दर्शन किए, तब उनके मुंह से भारतीयों व भारतीय प्रधानमंत्रियों के लिए प्रशंसा के शब्द निकलने लगे। खासकर, 2008 के बाद आतंकवाद से लड़ते हुए भारत की ताकत का किसिंजर को बखूबी एहसास हुआ। वह समझ गए कि आने वाले समय में दुनिया भारत को नजरंदाज नहीं कर पाएगी। 27 मई, 1923 को फर्थ, जर्मनी में जन्मे हेंज अल्फ्रेड किसिंजर ने अपनी आंखों से यहूदियों का उत्पीड़न देखा था

और एक दिन वह भी आया, जब उन्हें शांति के लिए नोबेल दिया गया। आज जब वह नहीं हैं, तो उन्हें समग्रता में देखते हुए अमेरिकी सत्ता के परंपरागत विरोधाभासों को महसूस करना आसान है।

Date:01-12-23

शांति दूत खोजता पश्चिम एशिया

राजमोहन गांधी, (ये लेखक के अपने विचार हैं)

अगर अमन-चैन की जरूरत दोनों तरफ महसूस की जा रही थी, तो गाजा में हमने जो तबाही देखी, वह महज अप्रिय सच्चाई थी। । इजरायल-फलस्तीन से आ रही तस्वीरों के बाद अब दुनिया को जल्द ही इस सवाल का जवाब भी खोजना होगा कि संघर्ष विराम के बाद आखिर क्या? युद्ध विराम के तीसरे दिन (26 नवंबर) जब प्रधानमंत्री बेंजामिन नेतन्याहू अचानक इजरायली सैनिकों के बीच गाजा पहुंचे, तो उन्होंने उनसे (और वहां मौजूद सभी से यही कहा कि हम अंत तक, यानी जब तक जीत नहीं मिल जाती, इसे जारी रखेंगे। अपनी बात आगे बढ़ाते हुए उन्होंने कहा, इस युद्ध में हमारे तीन लक्ष्य हैं- हमास को खत्म करना, अपने सभी बंधकों को वापस ले जाना और यह सुनिश्चित करना कि गाजा फिर से इजरायल के लिए खतरा न बने। नेतन्याहू ने यह भी दावा किया कि इजरायल के पास अपने लक्ष्यों को पाने के लिए जरूरी ताकत, इच्छाशक्ति और संकल्प है।

रिपोर्ट कहती हैं, इजरायल की योजना गाजा पट्टी के 20 लाख से अधिक फलस्तीनियों को दक्षिण में स्थित मिस्र के सिनाई सूबे में धकेलकर या मिस्र के बिल्कुल करीब, पर गाजा के भीतर ही समुद्र किनारे कुछ वर्गमील क्षेत्र में समेटकर गाजा पट्टी से भविष्य में आने वाले खतरे को खत्म करना है। उल्लेखनीय है, गाजा पट्टी वह इलाका है, जो करीब 140 वर्गमील क्षेत्र में फैला है और हमास के नियंत्रण में है

जाहिर है, यह जातीय नरसंहार और बंदी शिविरों के निर्माण करने जैसा होगा, पर क्या दुनिया इसे होने दे सकती है? निस्संदेह, 27 अक्तूबर को फ्रांस सहित 120 देशों ने संयुक्त राष्ट्र महासभा में उस प्रस्ताव के पक्ष में वोट डाले, जिसमें इजरायल से उत्तरी गाजा पर अपने हमले रोकने को कहा गया था। मगर यदि नेतन्याहू 90 प्रतिशत या पूरी तरह से गाजा को खाली करने का आदेश देते हैं, तो मिस्र या अन्य अरब देश, ईरान या तुर्की, या संयुक्त राष्ट्र अथवा ब्रिक्स या दुनिया की अन्य कोई क्या कोई इतना मजबूत देश या प्रभावशाली राष्ट्रों का समूह है, जैसी कोई नफरत नहीं है, और शायद इसके समाधान जो इजरायलियों और फलस्तीनियों के बीच परस्पर स्वीकार्य सह-अस्तित्व की दिशा में काम कर रहा हो ? ताकत क्या भौतिक रूप से इसमें दखल देगी? इन सभी ने 7 अक्तूबर की घटना पर इजरायल की प्रतिक्रिया (युद्ध) और उसकी प्रकृति की निंदा की थी।

इस सवाल का जवाब हम नहीं जानते, लेकिन कुछ देशों पर वाकई हस्तक्षेप का तेज दबाव पड़ सकता है। इसके अलावा, हमें इस बात पर भी ध्यान देना चाहिए कि कुछ मामलों में साल 2023 का अंत उन मौकों से अलग हो सकता है, जब दुनिया चुपचाप फलस्तीनियों को अपने ही घर व जमीन से जबरन भगाने का उपक्रम देखती रही है। पहला कारण, फलस्तीनियों को याद होगा कि 7 अक्तूबर को उन्होंने इजरायली प्रतिबंधों से ऊपर उठने की इच्छाशक्ति और क्षमता

दिखाई, हालांकि उस दिन उन्होंने बड़ी क्रूरता का प्रदर्शन किया था। दूसरा, अगर फलस्तीनियों के साथ एक बार फिर समान व्यवहार किया जाता है, और दुनिया उनको इंसान नहीं, बल्कि जानवर या उससे भी बदतर समझती है, तो उनमें नाराजगी काफी बढ़ जाएगी, और भविष्य में फिर किसी ऐसे मौकों पर गंभीर प्रतिक्रिया सामने आ सकती है तीसरा, यह उतना ही महत्वपूर्ण हो सकता है कि इजरायल और पश्चिमी दुनिया, दोनों की आबादी में अब ऐसा मजबूत वर्ग है, जो फलस्तीन की एक सुरक्षित और सम्मानजनक मातृभूमि की जरूरत को शिद्दत से समझता है। फलस्तीनी अधिकारों के लिए यूरोप और अमेरिका की सड़कों पर बड़ी संख्या में विभिन्न धर्मों व नस्लों के लोगों का प्रदर्शन अब आसानी से भुलाया नहीं जा सकता। अलबत्ता, उनकी संख्या बढ़ ही सकती है और, यही बात संभवतः उन कई इजरायलियों के लिए भी कही जा सकती है, जो अब फलस्तीनियों के स्वतंत्र राष्ट्र के अधिकार को स्वीकार करने लगे हैं।

आने वाले दिनों में डोनाल्ड ट्रंप बेशक कुछ भी कहें या करें, लेकिन 9 दिसंबर को उन्होंने जो कहा, और जिसका वीडियो 10 दिसंबर को सीएनएन ने प्रसारित किया, वह इजरायल के पक्ष में अमेरिकियों के घटते समर्थन का संकेत माना जा सकता है। डोनाल्ड ट्रंप ने उस वीडियो में कहा था, इतने सारे लोग मर रहे हैं, इजरायली और यहूदी लोगों के प्रति फलस्तीनी नफरत का दूसरा तरीका भी है।

क्या एक महीने पहले तक ट्रंप अपना यह आखिरी वाक्य कह सकते थे? और, हमारे प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने भले ही इजरायल के अपनी रक्षा के अधिकार को उचित माना है, लेकिन उनकी सरकार ने विदेश मंत्रालय के माध्यम से, सुरक्षित व मान्यता प्राप्त सीमाओं के भीतर 'संप्रभु, स्वतंत्र और व्यवहार्य फलस्तीन' के लिए इजरायल के साथ शांति से 'सीधी बातचीत' का आह्वान भी बार-बार किया।

तकरीबन 20 साल पहले इलिनोइस यूनिवर्सिटी में एक अतिथि भारतीय राजनीतिक विचारक ने साफ- साफ बताया था कि भारत-पाकिस्तान की तुलना में इजरायल-फलस्तीन विवाद को सुलझाना कहीं आसान है। इसके लिए हमें दोनों में समानताएं देखनी चाहिए। कई फलस्तीनी इस बात से नाराज हैं कि इजरायल का गठन उस जमीन पर बस्तियों के माध्यम से किया गया है, जो सदियों से फलस्तीनियों की थी। जबकि, कई इजरायली भी अपने पड़ोस में, यहां तक कि अपनी सीमा के भीतर फलस्तीनियों के अस्तित्व से नाराज हैं। ठीक इसी तरह, आज ऐसे कई भारतीय हैं, जो एक ऐसी दुनिया की कल्पना करते हैं, जिसके नक्शे में पाकिस्तान का कोई अस्तित्व न हो। बेशक, एक या दो क्रिकेट मैचों के लिए, पाकिस्तान हमारी दुनिया में फिर से प्रवेश कर सकता है, लेकिन उसे जल्द ही साफ- सुथरे तरीके से बाहर भी निकलना होगा। उसे दुनिया की हमारी तस्वीर बिगाड़ने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। हम पाकिस्तान के बिना भी अपने जीवन का आनंद ले सकते हैं। कई पाकिस्तानी भी ऐसी दुनिया पसंद नहीं करेंगे, जिसमें भारत या भारतीय हों। फिर भी, भारत और पाकिस्तान, दोनों हकीकत हैं। इजरायल और फलस्तीन की सच्चाई भी हमें इसी तरह से स्वीकार करनी होगी।

लिहाजा, क्या कोई ताकतवर शांतिदूत हमारे बीच है? यह आज का सबसे महत्वपूर्ण सवाल है। इसी तरह, क्या कोई इतना मजबूत देश या प्रभावशाली राष्ट्रों का समूह है, जो इजरायलियों और फलस्तीनियों के बीच स्वीकार्य सह-अस्तित्व की दिशा में इजरायल व फलस्तीन के संघर्ष विराम को आगे बढ़ाने की दिशा में काम कर रहा हो? क्या इस दुनिया में कोई नेतृत्व यह करेगा? हमें इन सवालों के जवाब तलाशने होंगे।